मुक्ति मार्ग

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

मुक्ति जीवन का परम लक्ष्य है। बन्धन से मुक्ति होती है। आसक्ति ही मनुष्य के बंधन का सबसे बड़ा कारण है। यह आसक्ति कर्ता भाव के कारण होती है। मुक्त होने के लिए कर्ता भाव का त्याग आवश्यक है। अज्ञान या अविद्या ही बंधन है। मैं और मेरापन बंधन है। यह धन सम्पत्ति मेरी है, परिवार मेरा है, पुत्र–पुत्री मेरे हैं, पत्नी मेरी है यह भाव बंधन है। मनुष्य वस्तुओं को तो अपना बना लेता है किन्तु वह यह कभी नहीं सोचता कि मैं कौन हूँ? आत्मा क्या है? जब यह भाव जाग्रत हो जाता है तो जीव आत्मोन्मुखी होता है। जब जग जायें तभी सवेरा अर्थात मानव तो अज्ञान की नीद में सो ही रहा है। जब इस मोह निद्रा से उसकी मुक्ति हो जाये तो उसे अपना स्वरूप दिखने लगता है। शरीर ओर आत्मा दोनों अलग–अलग है। शरीर पंच भूतात्मक है और आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप हैं चौरासी लाख यौनियों में सभी में आत्मा एकसमान है केवल अभिव्यक्ति का अन्तर है। आत्मा का बंधन कर्ता भाव के कारण हे। हमने जैसा बीज बोया है उसके कर्म के फल को प्राप्त करने के लिए यह शरीर मिला है। जीव अपने स्वरूप को समझ नहीं पाता। लेकिन उसे जैसे ही ज्ञान हो जाये मैं आत्मा हूँ वैसे ही वह मुक्त हो जाता है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र मुक्ति के मार्ग हैं। सम्यक् ज्ञान हो जाने के बाद यह ज्ञात हो जाता है कि यह संसार मिथ्या है। जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए हमने जीवनभर प्रयास किया वह वस्तु मेरी नहीं है। वह पुद्गलों का समूह है। जो वस्तु मेरी है उसको तो मैंने पहचाना ही नहीं। यही वस्तु जब ज्ञात हो जाती है तो आदमी मुक्त हो जाता है। मनुष्य के द्वारा किये गये कर्म फल देकर के नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य को संसार में रहते हुए विरक्त रहना चाहिए। जल में कमल की भांति जो व्यक्ति निर्लिप्त रहता है उसे कर्म बंधन नहीं होता।

बंधन का अर्थ है– परतंत्रता और मुक्ति का अर्थ है स्वतंत्रता। किसी भी तोते को यदि पिंजड़े में बांधकर रखा जाये और उसे खाने के लिए अच्छी–अच्छी वस्तुएं प्रदान की जाये फिर भी वह प्रसन्न नहीं रहता। वह मुक्त गगन में विचरन करना चाहता है। दार्शनिक दृष्टि से यदि

हम चिंतन करे तो बंधन और मुक्ति जीव के लिए आवश्यक है। जिनसे कर्म बंधे या कर्मों का बंधना बन्ध है। जो बंधे या जिसके द्वारा बांधा जाये या बन्धन मात्र को बन्ध कहते हैं। कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध हैं। कर्म प्रदेशों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना, वह बन्ध है। मिथ्यादर्शनादि द्वारों से आए हुए कर्म पुद्गलों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। जैसे बेड़ी आदि से बंधा हुआ प्राणी परतन्त्र हो जाता है। राग–द्वेषादि के निमित्त से जीव के साथ पौद्गलिक कर्मों का बन्ध निरन्तर होता है। जीव के भावों की विचित्रता के अनुसार वे कर्म भी विभिन्न प्रकार की फलदान शक्ति को लेकर आते हैं, इसी से वे विभिन्न स्वभाव या प्रकृति वाले होते हैं। प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। जिस प्रकार नीम की क्या प्रकृति है? कडुआपन। गुड़ की क्या प्रकृति है? मीठापन। उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म की क्या प्रकृति है? अर्थ का ज्ञान न होना इत्यादि। जीव के प्रदेशों की उथल–पुथल को अस्थिति तथा उथल–पुथल न होने को स्थिति कहते हैं। जिसका जो स्वभाव है, उससे च्युत न होना स्थिति है। जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का माधुर्य स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों का अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है। विविध प्रकार के पाक अर्थात् फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है। शुभाशुभ कर्म की निर्जरा के समय सुख–दुःख रूप फल देने की शक्ति वाला अनुभाग बन्ध है। कर्म रूप से परिणत पुद्गल स्कन्धों का परमाणुओं की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबन्ध है। दो के बिना बन्ध नहीं होता। एक हाथ से ताली जिस प्रकार नहीं बज सकती, उसी प्रकार बन्ध तत्त्व भी एक के बीच में नहीं हो सकता। सांसारिक जो विषय–सामग्री है, वह और उसका जो भोक्ता है आत्मा ये दोनों संयोग होते ही बन्ध हो जाते हैं। कर्म पुद्गलों के ग्रहण को बन्ध कहा जाता है। जीव के द्वारा कर्म पुद्गलों का ग्रहण क्षीर–नीर की भांति परस्पर आश्लेष होता है, उसे बन्ध कहा जाता है। वह प्रवाहरूप से अनादि और जो भिन्न–भिन्न कर्म बंधते रहते हैं, उनकी अपेक्षा सादि है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति ये सब कर्मों के आने के द्वार होने से आस्रव हैं। इनसे विपरीत सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, मोह व कषायहीन शुद्धात्म परिणति तथा मन, वचन, काय के व्यापार की निवृत्ति ये सब नवीन कर्मों के निरोध

के हेतु होने से संवर हैं। आसव्र का निरोध करना ही संवर है। जिनसे कर्म रुकें, वह कर्मों का रुकना संवर है। नगर के द्वार अच्छी तरह बन्द हों, वह नगर शत्रुओं को अगम्य है। जीव का चरम और परम लक्ष्य है– मोक्ष प्राप्ति। जिसने समस्त कर्मों का क्षय करके अपने साध्य को सिद्ध कर सफलता प्राप्त कर ली वह मोक्ष का अधिकारी है। बन्ध हेतुओं मिथ्यात्व व कषाय आदि के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है। कर्मों का पूर्ण रूप से छूटना मोक्ष है। मोक्ष प्राप्त कर लेने के पश्चात् संसार का आवागमन बंद हो जाता है। यह स्थिति परम शान्त की स्थिति है।